

प्रवचन नं.८ गाथा-१ ता. १५-६-७८ गुरुवार जेठ सुद-९ सं. २५०४

समयसार पहली गाथा का भावार्थ है - गाथा का अर्थ हो चुका है 'गाथा सूत्र में आचार्यने वक्ष्यामि कहा है' वोच्छामि कहा है न ! वोच्छामि का अर्थ वक्ष्यामि किया है। उसका अर्थ टीकाकार ने वच (परिभाषणे) धातु से परिभाषण किया है। उसका आशय इस प्रकार सूचित होता है कि चौदह पूर्व में ज्ञान प्रवाद नामका पांचमें पूर्व में बारह वस्तु अधिकार हैं उसमें एक एक के बीस-बीस प्राभृत अधिकार हैं। उसमें दसवें वस्तु (अधिकारमें) समय नाम का प्राभृत है। उसके मूल सूत्रों के शब्द का ज्ञान तो पहले बड़े आचार्यों को था, एवं उसके अर्थ का ज्ञान, शब्दों का नहीं, पदार्थों का ज्ञान, अर्थों का ज्ञान आचार्यों की परिपाटी अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्य को भी था। अर्थों का हो ! सूत्र शब्दों का नहीं, मूल शब्द नहीं, अर्थों का ज्ञान था। जो शब्द थे वह उस समय नहीं थे। आहाहा ! उसके अर्थ का ज्ञान आचार्यों की परिपाटी अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्य को भी था। उन्हें भी था इसका अर्थ यह कि (अन्य) आचार्यों को तो था एवं कुन्दकुन्दाचार्य को भी था।

उन्होंने समयप्राभृत का परिभाषण किया। परिभाषा सूत्र बांधा। अर्थात् ? सूत्र की दश जातियाँ कहने में आती हैं, उसमें एक परिभाषा जाति भी है। अर्थात् ? परिभाषा अर्थात् ? अधिकार को यथा-स्थान में अर्थ द्वारा सूचन करते हैं, शब्द की बात अभी यहाँ नहीं। शब्द तो थे ही नहीं अर्थ (पदार्थ) के द्वारा ज्ञान होता था। अर्थ को बताते, (हैं) - ऐसा कहना है। यथा-स्थान में अधिकार को जहाँ चाहिए वहाँ उसके अर्थ द्वारा दिखलाये वह परिभाषा कहलाती है। समझ में आता है ? मूल सूत्र के शब्दों का ज्ञान तो नहीं था, कुन्दकुन्दाचार्य को, उसके अर्थ (पदार्थ) का ज्ञान था और उस अर्थ को यथास्थान पर लिखना अर्थात् उसको परिभाषा कहा... 'वोच्छामि' यथास्थान पर अर्थ को कहेंगे, जिस जगह जिसकी जरूरत है, उस स्थान में उन सूत्रों का इसप्रकार अर्थ आयेगा। आहाहा !

कुन्दकुन्दाचार्य समयप्राभृत का परिभाषण करते हैं, अर्थात् समयप्राभृत के अर्थ को ही, उसके अर्थ को यथा-स्थान पर बतानेवाला परिभाषण सूत्र रचते हैं। है परिभाषा सूत्र, यहाँ यह भी इसी अर्थ को रचते हैं। मूलभाषा तो है नहीं इसलिये उसके अर्थ को यहाँ सूचित करते हैं।

'आचार्य ने मंगल के लिये सिद्धों को नमस्कार किया है' संसारी को शुद्धात्मा साध्य है। यहाँ तो संसारी को शुद्धात्मा साध्य है यह बात ली है, ऐसे जीव लिए

हैं। यहाँ जिसे आत्मा शुद्ध साध्य है ऐसे संसारी जीवों को यहाँ लिया है। जिसे शुद्धात्मा साध्य नहीं उसकी यहाँ बात नहीं। आहाहा ! संसारी को शुद्धात्मा साध्य है, 'और सिद्ध साक्षात् शुद्धात्मा है', सिद्धपरमात्मा साक्षात् शुद्धात्मा है। देखो यहाँ तो - ऐसा लिया, अन्यथा सिद्ध आत्मा यह क्षायकभाव है, परंतु यह शुद्धात्मा है (साक्षात् अर्थात् पर्याय है) पर्याय सिद्धात्मा है, परंतु पर्याय शुद्ध है। जैसा कारण समयसार त्रिकाल परम स्वभाव भाव अमर्यादितस्वरूप वस्तु, जिसे कर्म की उपस्थिति रूप निमित्त की अपेक्षा नहीं, और निमित्त के अभाव की भी अपेक्षा नहीं - ऐसा जो परम स्वभाव ज्ञायक भाव, और जिसे कारण-समयसार कहकर, उससे उत्पन्न हुआ केवलज्ञान, सिद्ध आत्मा इसे कार्यसमयसार कहा है। और कारण-समयसार तथा कार्य-समयसार दोनों में फर्क नहीं - ऐसा नियमसार में कहा है। यहाँ तो भाई ! यथास्थान पर जो हो वह आये, एक अक्षर पलटे तो पूरा पलट जाये। **और नियमसार में संसारी को भी सिद्ध जैसा कहा है, अशुद्ध पर्याय निकालकर (गौण करके), उसका स्वभाव है वह सिद्ध स्वरूप ही है। पर्याय में सिद्ध जैसा स्वभाव है - ऐसा नहीं। परंतु वस्तु प्रत्येक सिद्ध स्वरूप ही है।** इसलिए उसकी पर्याय में सिद्धपर्याय स्वरूप... सिद्ध स्वरूप है, इसलिये पर्याय में सिद्धपद प्राप्त होता है। प्राप्त की प्राप्ति है। आहाहा ! थोड़े शब्दों में भी कितना भरा है।

देखा ! सिद्ध (अर्थात्) साक्षात् शुद्धात्मा ? इसलिये उन्हें नमस्कार किया। **एक तरफ सिद्धों को भी क्षायक भाव कहकर वह जीव (में) नहीं - ऐसा नियमसारमें कहा है। क्षायकभाव, क्षयोपशम भाव, उपशमभाव, उदयभाव (चारों भाव) वस्तु में नहीं, त्रिकाली में कहाँ है ? वह तो पर्याय है। आहाहा ! एक तरफ यहाँ कहते हैं कि सिद्ध साक्षात् शुद्धात्मा है। वह पर्याय की अपेक्षा से क्षायकभाव से (है) आहाहा !** वीतराग मार्ग बहुत गम्भीर !! यह सिद्ध आत्मा साक्षात् शुद्धात्मा है। जिसे क्षायक भाव कहा और नियमसार में जीव में भी नहीं - ऐसा कहा है। इसप्रकार यह पर्याय (जीव में) नहीं परंतु पर्याय जो है वह तो साक्षात् शुद्धस्वरूप, क्षायकभाव, स्वभावभाव, केवलज्ञान, केवलदर्शन को स्वभाव कहा है। **तीन ज्ञान और तीन दर्शन को विभाव कहा है, दूसरी जगह इन चारों ज्ञान को विभाव कहा है, किस अपेक्षा से ? कि त्रिकाली स्वभाव नहीं तथा कर्म के अभाव की अपेक्षा केवलज्ञान में आती है, ऐसी क्षायक दशा, इस अपेक्षा से उसे विभाव कहा है। पण्डितजी ! केवलज्ञान को विभाव, यहाँ साक्षात् शुद्धात्मा (कहा है), कितनी अपेक्षाएँ है। आहाहा !**

'इसलिये इसे नमस्कार करना उचित है'। किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ? उसकी चर्चा टीकाकार ने मंगलाचरण में की है, ऊपर आ गया

है, वह यहाँ भी जानना। सभी गुणों से उसे बताया है अन्य मती एक नाम में विवाद करते ही उसका व्यच्छेद करते हैं। उन सिद्धों को परमात्मा कहते हैं अरहंत कहते हैं, सिद्ध आत्मा कहते हैं, पुण्यात्मा कहते हैं, अनेक प्रकार से जो उसमें लागू पड़ता है उस अपेक्षा कहते हैं। आहाहा !

‘सिद्धों को ‘सर्व’ - ऐसा विशेषण दिया है। आया था न ? वंदित्तु सव्वसिद्धे पहली गाथा में, सर्व सिद्धों को नमस्कार। इसलिये वह सिद्ध अनंत हैं यह अभिप्राय बताया, एक सिद्ध नहीं है, सिद्ध अनंत हैं। जब पूछो तब सिद्ध अनंत ही हैं, जब कि वर्तमान तो भगवान कुन्दकुन्दआचार्य के समय भी अनंत सिद्ध तो थे ही, परंतु **तीनों कालों में किसी भी समय अनंत सिद्ध न हों और दो चार संख्यात कि असंख्यात सिद्ध थे - ऐसा है ही नहीं, अनंत सिद्ध हैं।** आहाहाहा ! बस ! उन अनंत में संख्या मिलती जाय तो भी अनंत के अनंत ही, फिर भी निगोद के एक शरीर के अनंतवें भाग। एक राई जितना टुकड़ा लें, लहसन के प्याजके, उसमें असंख्य तो शरीर हैं और एक शरीर (जीवों की संख्या) के अनंतवें भाग सिद्ध हुये और जितने सिद्ध होंगे (वह अनंतवें भाग प्रमाण कहलायेंगे) किसी दिन असंख्यवें भाग में सिद्ध होंगे - ऐसा बनेगा नहीं। आहाहा ! अनंतकाल बीत गया, और अनंतकाल बीतेगा, भविष्य भविष्य भविष्य अनंत अनंत अनंत तो भी एक शरीर के जीवोंके वें अनंतभाग जितने सिद्ध रहेंगे। भविष्य पूरा किस दिन होगा ? आहाहा ! वस्तु की कोई स्थिति ऐसी है, क्षेत्र पूरा कहाँ होगा ? काल पूरा कहाँ होगा ? काल की शुरुआत कहाँ से होती है ? द्रव्य की पहली पर्याय कौन सी ? द्रव्य की आखरी पर्याय कौन सी ? आहाहाहाहा ! गजब स्वभाव है। पहली किस दिन थी ? द्रव्य अनादि का है और पर्याय अनादि है। इसप्रकार आखरी पर्याय किस दिन ? द्रव्य भी अनंत काल से है और पर्याय भी, इसी ना इसीप्रकार अनंत काल से है। आहाहा !

गहन विषय जिनेश्वर देव का, तत्त्व बहुत गहन और इसके सिवाय अन्य कहीं है नहीं। दूसरी जगह सब कल्पनाओं से बात की है, परंतु इसे गहरे उतरने का समय नहीं मिले, जैन के समुदाय में जन्मे, उसे यह व्रत करना और उपवास करना, दया पालना और दान करना, बस ! इसमें रूक गये बेचारे। आहाहा ! यह तो राग की क्रियाएँ हैं। आहाहा ! यहाँ कहते हैं आत्मा में शुद्ध साधक पर्याय प्रगट करके सिद्ध अनंत हो गये हैं। आहाहा ! सिद्ध स्वरूप तो थे ही परंतु पर्याय में साधक रूप से शुद्धि को प्रगट करके पर्याय में अनंत सिद्ध हुये। आहाहा ! अनंत सिद्धों की स्वीकृति की, शुद्धात्मा के साधन से अनंत हुये और अनंत सिद्ध हुये उनकी शुद्धता पूरी हुयी, ऐसे अनंत सिद्ध हैं। आहाहा !

‘और शुद्धात्मा एक ही है - ऐसा कहनेवाले अन्यमतियों का निराकरण किया। ‘सर्वव्यापी एक ही आत्मा है। आहाहा ! अभी वेदान्ती आये थे व्याख्यान सुनने निन्यानवे की साल में कांप में धांग्रधा के थे। एक, एक, एक, किया करते थे, एक, एक, एक- ऐसा किया करते थे, धांग्रधा के थे। सम्वत् २०९९ की बात है। अरे भाई ! एक है और एक नहीं - ऐसा निर्णय किसने किया ? (पर्याय ने) वह दो हो गये। निर्णय करनेवाली पर्याय और निर्णय किया द्रव्य का, तो दो हो गये। द्रव्य और पर्याय दो हो गये, तब द्वैत हो गया, परंतु यह वस्तु वीतराग के अलावा किसी ने जानी नहीं। इसलिये (सभी) कल्पना से बातें करते हैं, यह तो सर्वज्ञ... आहाहाहा ! जिसके क्षेत्र का अंत नहीं (- ऐसा आकाश) यह क्या ? क्या कहते हैं ? उसके प्रदेश जितने हैं उससे (भी) अनंत गुणे गुण हैं (एक जीव में) यह क्या कहते हैं !! एक द्रव्य में अनंत गुणे गुण इसमें हैं, उसका अंत नहीं। अंतिम कौन ? आकाश का प्रदेश, दशा, पर्याय अथवा प्रदेश - ऐसा है नहीं। उससे अनंत गुणे आत्मा में गुण, संख्या अपेक्षा अनंत, अनंत का अंत नहीं। इतने सभी गुण, ऐसे अनंत गुणों के स्वरूप को साधकर अनंता सिद्ध हो गये। एक ही शुद्धात्मा है। - ऐसा कहनेवालों का निषेध किया है।

फिर, ‘श्रुतकेवली शब्द के अर्थ में’ श्रुतकेवली (लिखा) था न ? ‘वोच्छामि समय पाहुडमिड़मो श्रुतकेवली भणियं। पाठ में तो श्रुतकेवली भणियं इतना है, फिर भी इसमें से दो (अर्थ) निकालना है (दो प्रकार से कहना है) हमारे (यहाँ) - ऐसा कहते हैं। ‘श्रुत तो प्रवाहरूप अनादि निधन प्रवाह आगम, श्रुत केवली और श्रुत केवली के दो अर्थ भिन्न किये श्रुतकेवली - ऐसा नहीं... श्रुत और केवली। आहाहा ! श्रुत तो अनादि अनंत अनिधन अर्थात् अनंत प्रवाह रूप - ऐसा का - ऐसा अनादि से प्रवाहरूप (है) आहाहा ! किस दिन आगम नहीं था ? संसार में जगत में किस दिन आगम नहीं था ? आहाहा ! किस समय सिद्ध नहीं थे ? किस दिन केवलज्ञानी मनुष्यरूप में नहीं थे ? हैं ? आहाहाहा ! इसीप्रकार आगम किस दिन नहीं था अनंत काल में ? आहाहा ! प्रवाहरूप में आगम अनादि से है। आहाहा... श्रुत अनादि अनंत, अनादि अर्थात् ‘अन’ नहीं आदि और अनिधन अर्थात् अंत नहीं, जिसकी आदि नहीं अंत नहीं - ऐसा प्रवाहरूप आगम आहाहा ! भूतकाल में आगम (नहीं) हमने पहले (था) कहा, पहला (आगम) - ऐसा नहीं और भविष्य में अब आगम पूरा हो गया - ऐसा भी नहीं। आहाहा ! अनादि अनंत प्रवाह रूप श्रुतज्ञान चला ही आता है। आहाहा ! आगम अनादि अनंत प्रवाहरूप (है)।

**‘केवली’ शब्द से सर्वज्ञ और परमागम के जाननेवाले श्रुतकेवली कहे। केवली**

**शब्द से दो (अर्थ) निकाले। उसमें श्रुत अकेला श्रुत-परमागम बस, केवली शब्द से** सर्वज्ञ भगवान। आहाहाहा ! कब नहीं थे ? तीनों कालों में तीनों कालों को जाननेवाले की उपस्थिति कब नहीं थी ? आहाहा ! अगम-अगम की (अटपटी) (सदा रहती है) की बातें है सभी। वस्तु ही ऐसी है आहाहा ! तुममें अनंतागुण है वह किस दिन नहीं थे ? और कब उनका अंत आयेगा ? अर्थात् गुण पूरे हो जायेंगे भविष्य में ? आहाहा ! उनकी पर्याय किस दिन पूरी हो जायेगी ?

अकेला आत्मा... स्वभाव की बातें है। आहाहा ! केवली शब्द से सर्वज्ञ और परमागम के जाननेवाले दोनों को लिया। नियमसार में तो दोनों शब्द अलग-अलग हैं। केवली श्रुतकेवली भण्ड - ऐसा स्पष्ट उल्लेख है। इसी भाव को यहाँ लिया है। कहने का आशय भी यह है। श्रुत भी है और केवली भी, दोनों हैं। सर्वज्ञ और श्रुतकेवली, श्रुत है द्रव्य अनादि अनंत आगम की वाणी उसकी भी शुरुआत नहीं उसका अंत भी नहीं। और केवली की शुरुआत भी नहीं और केवली का अंत भी नहीं। ऐसे परमागम को जाननेवाले गणधर, श्रुतकेवलियों... आहाहा ! उनकी भी आदि नहीं उनका भी अंत नहीं। आहाहा !

'उनमें से समयप्राभृत की उत्पत्ति कही' सर्वज्ञ और श्रुतकेवली, आगम अनादि अनंत, केवली श्रुतकेवली अनादि अनंत। यह **अनादि अनंत केवली और श्रुत केवली से समयप्राभृत की उत्पत्ति हुयी। प्रारंभ हुआ - ऐसा कुछ नहीं।** आहाहा ! यह समय प्राभृत की उत्पत्ति कही है। वह तो ग्रंथ की प्रमाणता बतलाई। ग्रंथ की यर्थाथता, प्रमाणता, यह ग्रंथ प्रमाण कैसे है ? कि इस कारण प्रमाण है। लोग कहते हैं कि यह प्रमाण है ? कि यह प्रमाण है ? कि यह सच्चा है ? अरे प्रभु ऐसी बात है ही नहीं। आहाहा ! **'यह ग्रंथ प्रमाणता को प्राप्त हुआ है, क्योंकि श्रुत, द्रव्यश्रुत भी अनादिअनंत है। कहनेवाले भावश्रुतकेवली भी अनादि अनंत हैं और सर्वज्ञ भी अनादि अनंत है तथा उनके द्वारा कहा हुआ (आगम) भी अनादि अनंत है।** सर्वज्ञने पहले यह कहा, अथवा श्रुतकेवलीने पहले यह कहा - ऐसा नहीं है। आहाहा ! कितनी गंभीरता।

यह तो वस्तु की स्थिति है, उसी का वर्णन है। इसमें - ऐसा होगा कि - ऐसा होगा - ऐसा है ही नहीं। - ऐसा ही है। आहाहा ! इसप्रकार ग्रंथ की प्रमाणता अर्थात् सत्यता बतलाई, यह ग्रंथ सत्य है - ऐसा उसमें सिद्ध कर दिया और अपनी बुद्धि से कल्पित कहने का निषेध किया है। आहाहा ! हम अपनी बुद्धि की कल्पना से कहते हैं - ऐसा नहीं। यह तो श्रुतकेवलियों द्वारा कहा हुआ श्रुत, और श्रुत अनादि का है इसप्रकार कहलाता है। आहाहा ! (तथा) 'सिद्धोवर्णः समाम्नाय' नहीं

आता ? व्याकरणमें आता है और मोक्षमार्ग प्रकाशक में आता है कि 'सिद्धो वर्ण'... भाषा है यह अनादि की सिद्ध है यह किसी ने बनाई है - ऐसा नहीं।

यह भाषा - (सिद्धोवर्ण.....) छोटी उम्र में पढ़ते थे, पहली (कक्षा) में हमें सिखाया, धूलीनिशाल (अंगुली से धूल में लिखकर सिखानेवाला स्कूल) में जाते थे। लिखनेवाले (अक्षर) धूल में लिखाते थे, तब पहला शब्द यह सिखाया था। 'सिद्धो वर्णः समाम्नायः', वहाँ कहाँ शब्द के अर्थ का ज्ञान था ? एक नथ्युमास्टर थे, एक साधारण व्यक्ति थे, धूली निशाल में... उनको वेतन थोड़ा थोड़ा देते थे। लड़कों (के माता-पिता) शादी हो या मृत्युभोज, तब देते थे। सीधा (आटा आदि) थोड़ा-थोड़ा देते चार-चार पैसा, जिससे उनकी आजीविका हो जाती थी, उसमें, उन्होंने पहले यह लिखाया था 'सिद्धोवर्णाः समाम्नायः'।

अपने मोक्षमार्ग प्रकाशक में है। यहाँ मोक्षमार्गप्रकाशक है ? ग्रंथ की प्रमाणता - ऐसा शब्द है। उसमें यह लिखा है। 'अकार' आदि उच्चार तो अनादिनिधन है, यह कहीं किसी ने नया बनाया नहीं। उनका आकार लिखना स्वयं की इच्छा अनुसार परंतु यह भी आकार उनके अनुसार होते हैं। परंतु जो अक्षर बोलने में आते हैं, वे तो सर्वत्र-सर्वदा इसीप्रकार प्रवर्तते हैं। कहा है न कि, 'सिद्धो वर्ण समाम्नाय' यह वर्ण शब्द है, उच्चार का संप्रदाय अक्षर के उच्चार की पद्धति स्वयं सिद्ध है। आहाहा ! मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है। आहा !

**और अक्षरों से उत्पन्न हुआ सत्य अर्थ का प्रकाशक पदों का समूह उसका नाम तो श्रुत है वह भी अनादि अनंत है।** आहा ! मोक्षमार्ग प्रकाशक में लिखा है, अक्षर अनादि है, सर्वज्ञ अनादि है श्रुतकेवली अनादि है। आहाहा ! इसप्रकार प्रमाणित होनेपर भी फिर इनका सच्चा या इनका सच्चा ऐसी शंका करना ?। आहाहा ! महाप्रमाणता को प्राप्त हुआ है। ग्रंथ की प्रमाणता बताई, और अपनी बुद्धि से कल्पित कहने का निषेध किया। यह तो अनादि से श्रुतकेवली केवलियों और अक्षरों से चली आती है। आहाहा ! नियमसार में भी - ऐसा कहा है और टीकाकार (कहते) टीका करनेवाले हम कौन ? पद्मप्रभमलधारी देव - ऐसा कहते हैं। यह टीका तो अनादि संतों से चली आती है। इस टीका का भाव संतो से चला आता है, नियमसार में है। अभी हमारा मन परमागम के सार की पुष्टरुचि से पुनः पुनः अत्यंत प्रेरित होता है। विकल्प उठते ही रहते हैं कि इसका - ऐसा हो, इसका - ऐसा हो, इस रुचि से प्रेरित होने के कारण तात्पर्यवृत्ति नाम की यह टीका रचते हैं। तथा गुणों के धरनेवाले गणधरों से रची हुयी और श्रुतधारकों की परम्परा से अच्छी तरह व्यक्त की हुई, इस परमागम के अर्थ सूत्र समूहों का कथन करने के लिये हम मंद बुद्धि कौन ?

यह तो भाव चला आता है। टीका का भाव नियमसार, यह भी परम्परा से मुनियों से चला आता है। मैं (कुछ) नया करता हूँ - ऐसा नहीं। पाठ है हो - ऐसा ! आहा !

### गुणधर गणधररचितं श्रुतधरसन्तानस्तु सुअक्तम्। परमागमार्थसार्थं वक्तुममुं के वयं मन्दाः।।

आहाहा ! यह भावश्रुतज्ञान यह भाव-केवलज्ञान यह वाणी अकार आदि के अक्षर अनादि हैं। आहाहाहा !

एक भाव को भी बराबर जाने तो सभी भाव को यथार्थ जाने। जयसेनाचार्य की टीका में है। एक भाव जाने और बराबर समझे उसे सभी भावों का ज्ञान यथार्थ हो जाता है। आहाहा ! कारण कि एक भाव गंभीर... गंभीर कथन करनेवाला और वाणी वह अनादि की। आहाहा ! उसके एक भाव को भी बराबर समझे तो सभी भावों का ज्ञान यथार्थ हो जाये। आहाहा !

यहाँ यह कहते हैं... अपनी बुद्धि से नहीं किया। अन्यवादी अल्पज्ञानी अपनी बुद्धि से पदार्थ का स्वरूप चाहे जिसप्रकार कह कर विवाद करें उनका असत्यार्थपना बताया, यह सभी झूठा है। आहाहा ! यह वाणी परमात्मा की कही हुयी, श्रुतकेवली की कही हुयी और वाणी वाणी के रूप में चला आती ही है। आहाहा !

अज्ञानी अपनी कल्पना से बात करे, वह मान्य नहीं। शास्त्र कल्पना से रचे और (जो) भाव अपने को ठीक लगे इस प्रकार रचे। उसमें यह वस्तु मान्य नहीं। सूक्ष्मबात है।

इस ग्रंथ का अभिधेय अर्थात् क्या कहना है वह चीज। संबंध और प्रयोजन, वाणी का संबंध वाचक के साथ और 'प्रयोजन' आत्मा को प्रगट करना। आत्मा को, ये शुद्धात्मा का स्वरूप वह अभिधेय है। देखा ? ध्येय यह है, शुद्धात्मा यह ध्येय कहलाता है। अतः शुद्धात्मा ध्येय है, आहाहाहा ! षट्द्रव्य (छह द्रव्य) ध्येय हैं - ऐसा नहीं कहा यहाँ। षट्द्रव्य का ज्ञान तो एक समय की पर्याय में आ जाता है जीव की। तथा यहाँ तो शुद्धात्मा वह अभिधेय है। आहाहा ! शुद्धात्मा का स्वरूप वह अभिधेय है, ध्येय। शुद्धवस्तु वह ध्येय, ध्रुव वह ध्येय है ध्रुव को ध्येय कहने का पूरा आशय है। आहाहा !

उसके वाचक यह शब्द (है), इस ग्रंथ के शब्द हैं वह वाचक हैं, उनका और शुद्धात्मा का वाच्य-वाचक संबंध है। यह संबंध है। आहाहा ! वाचक शब्द और वाच्य आत्मा शुद्ध ध्येय यह वाच्य-वाचक का संबंध है। आहाहा ! और प्रयोजन, ध्येय जो शुद्धात्मा था वही कहने का प्रयोजन है। कहने का आशय है। प्रयोजन तो शुद्धात्मा के स्वरूप की प्राप्ति होना वह प्रयोजन है। लो ! शुद्ध भगवान आत्मा के स्वरूपरूप

पर्याय की प्राप्ति होना प्रयोजन है।

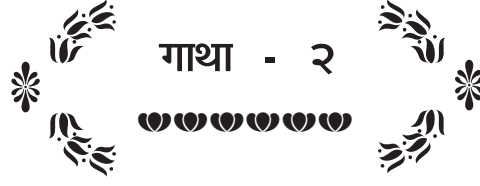
कहो एक गाथा में कितना भरा ?

अभिधेय अर्थात् क्या कहना है कि शुद्धात्मा।

शब्द वाचक हैं, वाचक और वाच्य में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, जैसे शक्कर शब्द और शक्कर पदार्थ, शक्कर पदार्थ है अभिधेय है वह अभिधेय है, शक्कर शब्द वाचक है, दोनों का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। वाचक, वाच्य को बतलाता है। आहाहा !

- ऐसा संबंध है। निमित्त-नैमित्तिक संबंध यह पहली गाथा हो गई।





तत्र तावत्समय एवाभिधीयते -

जीवो चरित्तदंसणणाणड्डिदो तं हि ससमयं जाण ।  
पोग्गलकम्मपदेसड्डिदं च तं जाण परसमयं ॥२॥

जीवः चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः तं हि स्वसमयं जानीहि ।  
पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं च तं जानीहि परसमयम् ॥२॥

प्रथम गाथा में समय प्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की है। इसलिये यह आकांक्षा होती है कि समय क्या है ? इसलिये पहले उस समय को ही कहते हैं :-

जीव चरित्तदर्शनज्ञानस्थित, स्वसमय निश्चय जानना;  
स्थित कर्मपुद्गलके प्रदेशों, परसमय जीव जानना ॥२॥

गाथार्थ :- हे भव्य ! [जीवः] जो जीव [चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः] दर्शन, ज्ञान चारित्र में स्थित हो रहा है [तं] उसे [हि] निश्चय से (वास्तव में) [स्वसमयं] स्वसमय [जानीहि] जानो [च] और जो जीव [पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं] पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित है [तं] उसे [परसमयं] परसमय [जानीहि] जानो ।

टीका :- 'समय' शब्द का अर्थ इस प्रकार है :- 'सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ 'एकपना' है, और 'अय् गतौ' धातु है, जिसका अर्थ गमन और ज्ञान भी है; इसलिये एक साथ ही (युगपद) जानना और परिणमन करना, -यह दोनों क्रियायें एकत्वपूर्वक करे वह समय है। यह जीव नामक पदार्थ एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणमन भी करता है और जानता भी है। इसलिये वह समय है। यह जीवपदार्थ सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति लक्षणयुक्त सत्ता सहित है। (इस विशेषण से जीव की सत्ता को न माननेवाले नास्तिकवादियों का मत खण्डन हो गया; तथा पुरुष को-जीव को अपरिणामी माननेवाले सांख्यवादियों का मत परिणमनस्वभाव कहने से खण्डित हो गया। नैयायिक और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते हैं, और बौद्ध क्षणिक ही मानते हैं; उनका निराकरण, सत्ता को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप कहने से हो गया।) और जीव चैतन्यस्वरूपता से नित्य

उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञानज्योतिस्वरूप है; (क्योंकि चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञानस्वरूप है)। (इस विशेषण से चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप न माननेवाले सांख्यमतवालों का निराकरण हो गया।) और वह जीव, अनंत धर्मों में रहनेवाला जो एकधर्मीपना है उसके कारण जिसे द्रव्यत्व प्रगट है - ऐसा है; (क्योंकि अनंत धर्मों की एकता द्रव्यत्व है)। (इस विशेषण से, वस्तु को धर्मों से रहित माननेवाले बौद्धमतियों का निषेध होगया।) और वह क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुणपर्यायों को अंगीकार किया है - ऐसा है। (पर्याय क्रमवर्ती होती हैं और गुण सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं)। (इस विशेषण से, पुरुष को निर्गुण माननेवाले सांख्यमतवालों का निरसन हो गया।) और वह, अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्तरूप को प्रकाशनेवाली एकरूपता प्राप्त की है - ऐसा है, (अर्थात् जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासित होते हैं, ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप है)। इस विशेषण से, ज्ञान अपने को ही जानता है पर को नहीं, - इसप्रकार एकाकार को ही माननेवाले का, तथा अपने को नहीं जानता किन्तु पर को जानता है, इसप्रकार अनेकाकार को ही माननेवाले का व्यवच्छेद हो गया और वह, अन्य द्रव्यों के जो विशिष्ट गुण-अवगाहना-गति-स्थिति-वर्तनाहेतुत्व और रूपित्व हैं, उनके अभाव के कारण और असाधारण चैतन्यस्वरूपतास्वभाव के सद्भाव के कारण आकाश, धर्म, अधर्म, काल और पुद्गल - इन पाँच द्रव्यों से भिन्न है। (इस विशेषण से एक ब्रह्मवस्तु को ही माननेवालेका खण्डन हो गया।) और वह, अनंत अन्य द्रव्यों के साथ अत्यंत एकक्षेत्रावगाहरूप होने पर भी, अपने स्वरूप से न छूटने से टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। (इस विशेषण से वस्तु-स्वभाव का नियम बताया है।) - ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है।

जब यह (जीव), सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति का उदय होने से, सर्व परद्रव्यों से छूटकर दर्शन-ज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप (अस्तित्वरूप) आत्मतत्त्व के साथ एकत्वरूप में लीन होकर प्रवृत्ति करता है तब दर्शन-ज्ञान-चारित्र्य में स्थित होने से अपने स्वरूप को एकत्वरूप से एक ही समय में जानता तथा परिणमता हुआ वह 'स्वसमय' है, इसप्रकार प्रतीत किया जाता है; किन्तु जब वह, अनादि अविद्यारूपी केल के मूल की गाँठ की भाँति (पुष्ट हुआ) मोह, उसके उदयानुसार प्रवृत्ति की आधीनता से, दर्शनज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप आत्मतत्त्व से छूटकर परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न मोहरागद्वेषादि भावों में एकताभाव से लीन होकर प्रवृत्त होता है तब पुद्गलकर्म के (कार्माणस्कन्धरूप)

प्रदेशोंमें स्थित होने से युगपद् पर को एकत्वपूर्वक जानता और पररूप से एकत्वपूर्वक परिणमित होता हुआ 'परसमय' है, इसप्रकार प्रतीति की जाती है। इसप्रकार जीव नामक पदार्थ की स्वसमय और परसमयरूप द्विविधता प्रगट होती है।

भावार्थ :- जीव नामक वस्तु को पदार्थ कहा है। 'जीव' इसप्रकार अक्षरों का समूह 'पद' है और उस पद से जो द्रव्यपर्यायरूप अनेकांतस्वरूपता निश्चित की जाये वह पदार्थ है। यह जीवपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सत्तास्वरूप है, दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है, अनंतधर्मस्वरूप द्रव्य है, द्रव्य होने से वस्तु है, गुणपर्यायवान है, उसका स्वपरप्रकाशक ज्ञान अनेकाकाररूप एक है, और वह (जीवपदार्थ) आकाशादि से भिन्न असाधारण चैतन्यगुणस्वरूप है, तथा अन्य द्रव्यों के साथ एक क्षेत्र में रहने पर भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। - ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है। जब वह अपने स्वभाव में स्थित हो तब स्वसमय है, और परस्वभाव-रागद्वेषमोहरूप होकर रहे तब परसमय है। इसप्रकार जीव के द्विविधता आती है।



### गाथा - २ पर प्रवचन

'प्रथम गाथा में समयप्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की, सिद्धांत अर्थात् पदार्थ को कहने की प्रतिज्ञा की, वहाँ यह आकांक्षा हो - इच्छा हो कि 'समय' अर्थात् क्या ? 'समय' किसे कहना ? तुम समयप्राभृत कहना चाहते हो... तो किसको समय कहना ? तुम क्या कहना चाहते हो ? समय अर्थात् क्या ? आहा.....! अतः अब पहले समय को ही कहते हैं। समय किसे कहना उसकी व्याख्या दूसरी गाथा से शुरू करते हैं। आहाहा !'

'जीवो' पहले यहाँ से लिया 'जीवो' इधर से उठाया। 'जीवो' वहाँ जीवः है न व्युत्सर्ग...? जीव को बताना हैं यहाँ ! और इसलिये ४७ शक्तियों में पहली शक्ति 'जीवत्वशक्ति' कही है। वह यहाँ से ली है। जीव त्रिकाल जीवत्वशक्ति से विराजता है। भगवान आत्मा त्रिकाल अपनी जीवत्वशक्ति अर्थात् गुण अर्थात् अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद और अनंत बल इससे उस जीव का जीवन अनादि से है। 'जीवो' - ऐसा उठाया। इसप्रकार संस्कृत में व्युत्सर्ग होगया 'जीवो' - ऐसा कहें तो जीवो जो जीव है उसप्रकार जिये, वह जीवत्वशक्ति कही है जिसप्रकार जीव वस्तु है। उस प्रकार जिये उसे जीव कहते हैं। आहाहाहा ! इस शरीर से... और इन्द्रियों से दशप्राणों से जिये वह जीव नहीं। आहाहा !

'जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो-जीवो दंसणणाण दंसण ठिदो-' वहाँ 'जीवो' आया न

यहाँ 'ठिठो' आया। तं हि ससमयं जाण। उसे स्वसमय जानो। आहाहाहा ! आदेश किया है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य 'जाण' - ऐसा कहते हैं। 'जाण' तो इसका अर्थ यह है कि अनजान को बतलाते हैं कि जानो। जो जानते नहीं, उसे कहते हैं कि 'जान' आहाहा !

**'पोग्गलकम्मदेसड्डिदं' च तं जाण परसमयं।।** आहाहा !

जीव चरित-दर्शन-ज्ञान स्थित स्वसमय निश्चय जानना..... इसप्रकार जिये-(मात्र) जीव इसप्रकार नहीं कहते हैं। परंतु दर्शन-ज्ञान-चारित्र से जीवे वह जीव है। तब उसने जीव जाना कहलाये। आहाहाहा ! क्या कहा ? जीव है यह अनंत-दर्शन-ज्ञान-आनंद और वीर्य से तो जीता है, त्रिकाल, परंतु इस जीव को इसप्रकार जिसने जाना, माना और अनुभव किया उसे स्वसमय कहा जाता है। आहाहा ! उसने आत्मा को जाना - ऐसा कहा जाता है।

पहले गाथार्थ लेते हैं। 'हे भव्य ! इस प्रकार यह लिया है 'जाण' वास्तवमें है न..... ? 'जाण' तो किसी को कहते हैं न.....। हे भव्य। आहाहा ! जीव दर्शन ज्ञान चारित्र में स्थित रहा है, स्थित हो रहा है, पर्याय में हो। आहाहा ! जीव त्रिकाल (जीवत्व) शक्ति से तो जी रहा है। परंतु इससे जी रहा है इसका ज्ञान जिसको होता है, उसकी श्रद्धा हो, स्थिर हो वह सच्चा जीव है। आहाहा ! चारित्र में स्थित हो रहा है है न ? उसे निश्चय से स्वसमय जानो। उसे वास्तविक आत्मा जानो। जिसे सम्यग्दर्शन है। (श्रोता :- ऐसा कहा कि साधु पद हो तो वास्तविक आत्मा हो ?) यह यहाँ साधु, कहलाते हैं न.....! साधु कहलाते हैं वह तीन बोलों से उठाया है ! कहनेवाले स्वयं साधु है न ! इसलिये छठवीं गाथा में प्रमत्त-अप्रमत्त का निषेध किया है न.....! (जब कि) स्वयं प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान में है। उसका निषेध करके, ज्ञायकभाव हूँ - ऐसा कहा है। कहनेवाले स्वयं अपनी स्थिति को साथ में लेकर वर्णन कर रहे हैं। आहाहा !

तथा जीव अर्थात् स्वसमय... अपने में आया है उसे यह कहते हैं कि, जो जीवस्वरूप भगवान, उसके सन्मुख होकर जो सम्यग्दर्शन, उसका ज्ञान, उसमें स्थिरता- ऐसा जीव जो स्वसमय में आया और स्वसमय को जाना और स्वसमयरूप हुआ - ऐसा कहा जाता है। आहाहाहाहा !

गजब शैली है न !! समयसार अर्थात्..... (श्रोता:- दिव्यध्वनि) आहाहा ! थोड़ा भी धीरे शांति से अंदर में विचार करके..... अरे ! पशु (घास) खाते है न पशु, फिर शांति से बैठकर अंतर में जुगाली करते है..... एक साथ पेट भर लेते (फिर जुगाली करते) इसप्रकार इसकी जुगाली करना चाहिए, अर्थात् बार-बार उसका मंथन

होना चाहिए। आहाहा !

जीव, स्वसमय उसे कहते हैं कि जिसकी पर्याय में, जिसकी दशा में दशावान की प्रतीति हुयी है, उसकी दशा में दशावान का ज्ञान हुआ है, उसकी दशा में दशावान में ठहरा है। आहाहा ! 'उसे स्वसमय जानो'... कुन्दकुन्दाचार्य आदेश देते हैं। (श्रोता:- पर्याय से तो जाने) जानो..... जानना ही है। आहाहा ! बापू ! - ऐसा रहने दो, संदेह नहीं करो, नहीं जान सकूंगा... रहने दो। मुझे यह कठिन लगता है (- ऐसा) रहने दो !! 'है' उसे प्राप्त करना उसमें तुम्हें कठिन क्यों लगता है - ऐसा कहते हैं। आहाहा !

भगवान (आत्मा) को परमाणु (को) अपना करना हो तो नहीं हो सके, अरे राग को कायम रखना हो तो नहीं कर सकते परंतु यह तो कर सकते हैं। आहाहा ! 'जीवो चरितदंसण णाणटिदो' भाषा कैसी प्रयोग की है ! जीव में दर्शनज्ञान स्थित हुआ - ऐसा न लेकर, 'जीव दर्शनज्ञानचारित्र में स्थित हुआ'... क्या कहा ? (श्रोता :- जीव ठहरा) क्योंकि ध्येय तो आत्मा है। उसे ध्येय बना करके जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ, तो वह तो द्रव्य के आश्रय से हुआ है, और यहां तो कहते हैं कि जो जीव दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहरे उसे स्वसमय कहते हैं, यहाँ ठहरो (- ऐसा कहते हैं) आहाहा !!

जीव जो अनादि से कर्म के प्रदेश अर्थात् (वि) भाव - ऐसा विकार उसमें ठहरता है, यह तो अनादि से है। यह तो अजीव है। आहाहा ! परंतु जो जीव अपनी सम्पदाको पूरी सम्पदा को ज्ञान में जानकर..... प्रतीति करके और उसमें ठहरता है, जीव उसमें ठहरता है। आहाहा ! दर्शन-ज्ञान-चारित्र में जीव ठहरता है। दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीव के आश्रय से होते है - ऐसा न लेकर..... आहाहाहा ! यह जैसा राग में ठहरता था, अब वह स्वभाव में ठहरता है - ऐसा बताना है, आहाहा ! बहुत अल्प शब्द (में), कहा है। यह तो निवृत्ति का मार्ग है बापू ! आहाहा !

'स्वसमय जानो' जो भगवान प्रभु (निजात्मा) पूर्ण संपत्ति से भरा हुआ है, वह जीव स्वयं स्वयं को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में ठहराता है। यहाँ जो अनादि से राग में विकार में ठहरता था, उसकी पहले बात न ली, उसकी बाद में लेंगे। पहले तो यहाँ शुरूआत करना है, और शुरूआत करनेवालों को कहना है, इसलिये इन्होंने यह बात पहले ली। पहले पद में यह लिया 'जीवो चरितदंसणणाण टिदो' फिर वह अनादि की बात करेंगे। आहाहा ! उसको निश्चय से अर्थात् 'ही' - वास्तव में / जो जीव अपनी निर्मल पर्याय में ठहरता है, जीव जीव में रहता है, द्रव्य में (रहता) - ऐसा नहीं, जीव जीवके द्रव्य में रहता है - ऐसा नहीं, द्रव्य तो ठहरा हुआ ही है,

परंतु यह जीवद्रव्य अपने दर्शन-ज्ञान-चारित्र जीव (में) स्थिर होता है, उसे स्वसमय अर्थात् आत्मा जानो, वह आत्मा है, है शब्द इसमें ? आहाहा !

जीव, त्रिकाली जीव में रहता है - ऐसा नहीं, त्रिकाली तो रहा हुआ (ही) है। परंतु रहे हुये को जाना किसने ? रहा है वह अंदर है - ऐसा जाने बिना रहा है - ऐसा जाना किसने ? (श्रोता:- पर्याय ने) आहाहा ! परम स्वभावभाव भगवान आत्मा अपने में रहा है, परंतु रहा है - ऐसा जाना किसने ? रहा है वह तो रहा है (क्या) उसके ध्रुव ने जाना ? आहाहा ! जीव... त्रिकाल परमस्वभावभावरूप रहता है। - ऐसा जिसने सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसकी जिसने प्रतीति की- ऐसा जिसने पहचान कर प्रतीति की, यह है - ऐसा जान कर प्रतीति की (तब) यह आत्मा प्रतीति में आया ! यह आत्मा, आत्मद्रव्य में तो था। परंतु उसकी प्रतीति में आया यह। आहाहा ! 'दंसण' (दर्शन) में आया। उसके ज्ञान में आया। आहाहा ! भगवान आत्मा पूर्णज्ञान से तो (ध्रुव) है परंतु 'है' - ऐसा जाना किसने ? जाने बिना वह 'है' यह माना किसने ? आहाहा ! रमणीकभाई ? - ऐसा सूक्ष्म है, आहाहा ! गजब बात है। एक एक गाथा और एक एक पद..... शिवपद की भनकार बजती है। आहाहा!

यह जीव है। अनंत अपरिमित गुणों का भण्डार, परंतु जिसने जाना (नहीं), और माना नहीं, उसको कहा है ? आहाहा ! कहा था न..... प्रश्न हुआ था न अभी यहाँ। वारिया हैं, एक त्रिभुवन भाई, उन्होंने प्रश्न किया था, कि प्रभु आप कारण परमात्मा कहते हो जीव को..... 'कारणपरमात्मा' कारणजीव, कारणप्रभु... यदि कारण हो तो उसका कार्य आना चाहिए परंतु कार्य तो आता नहीं, कारण परमात्मा तो है आप कहते हो। राजकोट में प्रश्न हुआ था। इस काठियावाड़ में उनके पिताश्री वीरजीभाई को दिगंबर के शास्त्रों का अभ्यास पहले उन्हीं को था। इस काठियावाड़ में वीरजीभाई वकील थे। १०-११-१२ वर्ष में गुजर गये। उनके लड़के का प्रश्न था, कारण परमात्मा आप कहते हो प्रभु ! तो कारण है तो कार्य आना चाहिए न ? और कार्य तो आता नहीं !

कहा, किसको ? कारण परमात्मा है - ऐसा जिसने - ऐसा स्वीकार किया है उसे कार्य हुये बिना रहता नहीं। परंतु स्वीकार नहीं, वहाँ कार्य कहाँ से आये इसे ? उसकी दृष्टि में कारण परमात्मा है ? वह तो है ही नहीं। दृष्टि में तो पर्याय और राग हैं। उसे कारण में से कार्य कहाँ से आये ? इसमें समझ में आता है ? आहाहा !

कारण परमात्मा है... परंतु किसको ? है जिसने - ऐसा माना जाना, जिसने यह जाना-माना उसको है। अर्थात् यह परिणमन हुआ ऐसी पर्याय हुयी। उसकी पर्याय में उसकी स्वीकृति हुई है, तब यहाँ पर्याय हुयी है। उसकी स्वीकृति बिना, उसका

कार्य आये ही नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्ष का मार्ग... इस त्रिकाली चीज की मान्यता में ज्ञान के ज्ञेय बिना यह बात आती ही नहीं। इस ज्ञान में वह ज्ञेय आया - ऐसा जाना तब ज्ञान आया। 'इतना है' ऐसी प्रतीति की तब सम्यग्दर्शन में आत्मा इतना है - ऐसा माना। आहाहा ! यहाँ इन तीन बोलों से बात की है, स्वयं वास्तवमें मुनि हैं न !

'चरितंदसणणाणं.....ठिदो' - ऐसा लिया है उसमें भी पहला 'चरित' शब्द है वह तो पद की रचना के लिये है। पद्य है न यह..... और काव्य की रचना पद्य के लिये 'चरित' पहले लिया। वैसे तो 'दंसणणाणचरित' है। परंतु पाठ में - ऐसा आया है। 'चरितंदसणणाण ठिदो' यह गद्य होने से पद्य की रचना में इसप्रकार आया है। अन्यथा वस्तु की स्थिति में तो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में है न। आहाहा ! देखो ! अर्थ क्यों रखा है देखा ? पाठ तो 'चरितंदसणणाण' स्थित है..... है ? गाथार्थ (में) अर्थ कैसा किया, दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित रहा है। वहाँ - ऐसा कहा है गाथार्थ देखो ! मूलगाथाओं का पहला शब्द है, टीका नहीं-टीका नहीं। आहाहा ! आहाहाहा ! **यह पण्डित कहलाते जो कहने का आशय हो वही आशय निकाले और समझे यह.....कोरी व्याकरणवाले (पंडित) नहीं निकाल सकते।** आहाहा ! आहाहा !

अरे ! भगवान एक बार सुनो तो सही, प्रभु तुम विरोध करते हो (और कहते हो) यह एकांत है, एकांत है परंतु बापू। भाई निश्चयनय का अर्थ है सम्यक् एकांत है। नय सम्यक् एकांत है। प्रमाण में अनेकांत है। आहाहा ! सम्यक् एकांत में जैसा जीव है वैसा उसने 'दंसण' प्रतीति की। यह दर्शन में स्थित हुआ; दर्शन आत्मा के आश्रय से हुआ - ऐसा न कहकर.....दर्शन में आत्मा स्थिर हुआ। पर्याय में आत्मा इस निर्मलपर्याय में आत्मा आया, ध्रुव तो था। आहाहा ! समझ में आया ?

- ऐसा मार्ग है प्रभु ! बहुत अलग बात है भाई, इसकी एक एक गाथा एक एक शब्द ने गजब काम किया है आहाहा ! ( श्रोता :- कहते हैं कि पर्याय छूती नहीं, इधर आ गया ! ) पर्याय में जानने में आया तब उसे आत्मा कहने में आया, नहीं जानने में आया उन्हें आत्मा है कहाँ ? आहाहा ! घर में हीरा पड़ा है परंतु खबर नहीं, कि कोयला है कि हीरा ? आहाहा ! ऐसी वस्तु जो है वह है उतनी की उतनी, इतनी प्रतीति किये बिना वह है यह आया, किसे ? आहाहा ! विशेष कहेंगे.....

(प्रमाण वचन गुरुदेव !)

